लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध

पंकज चोपड़ा
लेक्चरर,
परफार्मिंग आर्ट विभाग
स्वामी विवेकानन्द
सुभारती विश्वविद्यालय,
मेरठ 250005
(उ0प्र0)

लोक संगीत दो शब्दों से मिलकर बना है, 'लोक और संगीत'। इसका सामान्य अर्थ है लोगों का संगीत। लोक संगीत लोक निर्मित लोक प्रचलित व लोक विषयक होना चाहिए। यह संगीत लोक के साथ जुड़ा हुआ है इसलिए यह शास्त्रीय संगीत से भी पुराना है। इस प्रकार लोक संगीत का जन्म लोक के जन्म के साथ ही कहा जा सकता है। महात्मा गांधी ने भी कहा है "लोक संगीत में चराचर जगत गाता है और नृत्य करता है।"

लोक संगीत किसी भी देश तथा उसके राज्यों की पहचान होता है। लोक संगीत से किसी भी राष्ट्र की कला, वहाँ के जनजीवन और इतिहास का भी बोध होता है। लोक कलाएँ मुख्यतः तीन प्रकार की होती है– 1. लोक गीत 2. लोक नृत्य 3 लोक नाटिकाएँ।

इन तीनों कलाओं को अलग–अलग या एक ही प्रदर्शन में सम्मिलित किया जा सकता है। लोक कलाएँ किसी भी देश की सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों से प्रभावित होती है। तीनों ही लोक कलाओं में संगीत का विशेष महत्व होता है। लोक गीत की व्याख्या करते हुऐ श्री हरिशचन्द्र श्रीवास्तव जी ने राग परिचय भाग–1 में कहा है – यह ग्रामीणों का गीत है। इसके अन्तर्गत शादी के गीत, विभिन्न संस्कारों पर गाए जाने वाले गीत, चैती, कजरी, आल्हा, बिरहा, लोरी, बाऊल, माहिया, भटियाली, मांझी आदि लोकगीत आते हैं। इनका स्वरूप सरल, भावपूर्ण, कुछ स्वरों के अन्दर सीमित तथा लय प्रधान होता है। इन गीतों को सुनते ही साधारण व्यक्ति ताली देने लगते हैं।

विभिन्न प्रान्तों के लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत में पारस्पारिक सम्बन्ध–

पंजाब : पंजाब का लोक संगीत अपनी विशेषताओं के कारण समस्त भारत में प्रचलित व लोकप्रिय है। पंजाब की लोक कलाओं में मुख्य रूप से नृत्यों की शैली अनुपम है। इनमें पंजाबी जीवन प्रधानता से झलकता है।

पंजाब के लोक गीतों में भी बहुत से शास्त्रीय रागों का आभास मिलता है। सिन्दूरा, मॉड, पहाड़ी आदि राग पंजाब के देसी रागों में आते हैं। ढोला ग्रामीण गायकों के द्वारा गाया जाता है यह कहरवा ताल की द्रुत लय में गाया–बजाया जाता है। अधिकतर यह भैरवी व तिलंग रागों पर आधारित होता है। उदाहरण – 'निक्का मोटा बाजरा माही ते, मेरा कौण चुगैंदी ढोला'

पंजाबी लोक संगीत में 'हीर' की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके स्वर हृदय को स्पर्श करते हैं। इसकी भाषा थोडी कठिन होती है। पंजाब में संगीत की 'वार–गायन' परम्परा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह गायन विद्या गुरुनानक देव जी के अवतरित होने से पहले भी प्रचलित थी। पंजाब में शास्त्रीय संगीत गायकों की अपेक्षा लोक संगीत का महत्व कहीं अधिक है।

कव्वाली पंजाब में विकसित एवं बहुत लोकप्रिय है। इसलिए इस शैली पर फारसी व उर्दू भाषा का प्रभाव पड़ा। पंजाब में पंजाबी मिश्रित उर्दू भाषा में भी कव्वालियाँ प्रचार में है। कहा जाता है कि तेरहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सूफी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया के साहित्य एवं संगीत प्रेमी सुविख्यात शिष्य अमीर खुसरो ने ही कव्वाली गायन को नया मोड दिया।

पंजाबी अंग की ठुमरी, काफी और टप्पा जैसी शैलियों का विकास इसी धरती पर हुआ। टप्पा गायन शैली शोरी मियाँ द्वारा अस्तित्व में आयी। इसे पंजाब के ऊँट वाले गाते थे। पंजाबी ठुमरियाँ भी पंजाब के लोक संगीत की धुनों से ही विकसित हुई हैं। पंजाब में ठुमरियाँ ब्रजभाषा और मिश्रित हिन्दी भाषा के अतिरिक्त पंजाबी भाषा में भी गायी जाती हैं।

इस प्रकार यह निष्कार्ष निकलता है कि पंजाब की लोक धुनों में अनेक शास्त्रीय रागों की स्वर–संगतियों का स्पष्ट आभास मिलाता है। साथ ही उन धुनों ने पंजाब के संगीत के विकास में और शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत के प्रति वहाँ के लोगो के रूझान में निश्चय ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। श्री आई0डी0 वर्मा द्वारा लिखित पंजाबी लोक गीत की कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं–

मेरे गोरे हत्थां दी मैंहदी, रही वाज्जां तैनूं मार।
भुक्खी सदर निमाणी सैहकदी, करे तेरे ताई नित्त पुकार।।
आजा दिलां देआ जानियां, पई मचे कलेजे हाहाकार।।।

उत्तर प्रदेश : 'कजरी, का क्षेत्र मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग है। यह लोक गीतों में प्रचलित एक बहुत ही लोकप्रिय शैली है। मिर्जापुर और उसके आस–पास का क्षेत्र 'कजरी' के लिए प्रसिद्ध है। बनारस में मिर्जापुर से ही पहुँची, जो बाद में वहाँ अपना ली गई। कजरी के अन्तर्गत विरह वेदना का मार्मिक वर्णन होता है।

डेढ़ताल – यह अवधी भाषा का एक लोकप्रिय लोकगीत है। यह अयोध्या तथा उसके अन्तर्गत आने वाले उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में गाया जाता है। इसके नाम के विषय तथा पुनः चाचर में आ जाने के कारण ही इसका नामस 'डेढ़ताल' पड़ा होगा। इस लोकगीत में भगवान श्री राम की लीलाओं का वर्णन होता है।

चौताला – इस लोकगीत की भाषा अवधी होती है। यह लोकगीत उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग मुख्यतः अयोध्या के आस–पास गाया जाता है। यह चाचर ताल से आरम्भ होकर कहरवा ताल में परिवर्तित हो जाता है। इसमें भगवान श्री रामचन्द्र तथा श्री कृष्ण की लीलाओं से उत्पन्न अनुभूति की अभिव्यक्ति की जाती है।

उत्तर प्रदेश के एक लोकगीत लावनी की कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं –

पड़े रहे तेरे रंगले बंगले खाली बारहदरी रही। जोड़–जोड़ भर लिए खजाने फिर भी तृष्णा अड़ी रही।। इक ब्रह्मण की सुनो कहानी पूजा करने आया था। नहाय धोकर नदी किनारे आसन खूब जमाया था। आय गया यम का परवाना हाथ में माला पड़ी रही।।

राजस्थान : भौगोलिक दृष्टि से राजस्थानी लोक संगीत के दो भाग किए जा सकते है –

1. दक्षिणी भाग या पहाड़ी भाग
2. रेगिस्तानी भाग या मैदानी भाग

पहाड़ी भाग में आदिवासियों का लोकसंगीत है। यहाँ की घाटियाँ गीतों से गूंजती है। इसलिए यहाँ ऊँचे स्वर की गायकी नही मिलती इनके गीतों में स्थाई भाग ही रहता है, अंतरे प्रायः नही होते। यहाँ के आदिवासी लोग भील, भीजे, गरसिए और सहरिए हैं। ये मादल बजाते है जिस पर दादरा का पूर्व रूप का ठेका अक्सर बजता है। भीलों में स्त्री–पुरुष प्रायः नृत्य और गीतों में भाग लेते है। यहाँ के लोगगीत है– लालर, माहर, घुमर के गीत, पटेल्या बीछियो आदि। रेगिस्तानी भाग की धुन लम्बी होती है, इसमें स्वर प्रस्तार अधिक है साथ ही खुला वातावरण एवं मैदान होने के कारण यहाँ का लोक संगीत ऊँचे स्वर का मिलता है। यहाँ के प्रसिद्ध गीत है – गोरबन्द, पणिहारी, पीपली, मूमल, कलाली, कसमों, केवड़ी, घूघरी, कूँजा आदि। पूर्वी क्षेत्र ब्रज की संस्कृति से मिलता है। पुरुषों का लोकप्रिय वाद्य 'अलगोजा' और 'बाँसुरी' है। कसबों के लोक संगीत में राग–रागनियों की कुछ झलक देखने में आती है। पिछड़ी जातियाँ निर्गुणी पद या सबद बाणियाँ गाती है। इनकी धुने शान्ति देने वाली है। इसके साथ इकतारा बजाता है। मेलों के संगीत में डेरू बजता है। होली के अवसर पर 'टप के साथ' गीत और नृत्य चलते है।

उदाहरण – राजस्थानी लोक गीत ''चाँदरों चिमकारों'', शब्द–श्री 'सहन'

बो मुलक्यों आमलियै मैं चाँद, गीत प्रतिरा गैंतो।।
किरण्या देख दियो चिमकारों,
किरत्यों देख कियो टिमकारो।
पलक्यों देख पियो मद सारों,
बदल्यों देख रयो छिणगारों,
रैग्यों पण हिवडै नै थाम, टल–टल आँसुड़ा टलकांतों।।

लोक संगीत मे लय बहुत महत्वपूर्ण होती है। यह इसकी मुख्य विशेषताओं में से एक है। लोक संगीत से अनेक तालों का विकास हुआ तथा बाद में इन तालों का प्रयोग शास्त्रीय संगीत में हुआ। जैसे– दादरा, कहरवा, खेमटा आदि।

इस प्रकार यह कह सकते हैं कि शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति में लोक संगीत का भी योगदान है। दोनों ही एक दूसरे के पूरक व प्रेरक कहे जा सकते हैं। शास्त्रीय संगीत से अधिकतर वे लोग आनन्द ले पाते है, जिन्होने अधिक या कम, सही संगीत की शिक्षा प्राप्त की हो। बसन्त–बहार, बहादुरी तोड़ी और हमीर जैसे रागों की गहराई का आनन्द वही व्यक्ति ले सकता है, जिसने संगीत की तालीम हासिल की हो। इसी प्रकार तबला, सितार, वायलिन, सरोद, वीणा आदि के वादन का आनन्द वे ही प्राप्त कर सकते हैं जिन्हें स्वर की बारीकियाँ, उतार–चढ़ाव, मींड–मुर्की, जमजमा, सूत, घसीट आदि का ज्ञान हो। इसके विपरीत लोक संगीत में कहरवा की लग्गी–लड़ी एवं गायन या वादन द्वारा प्रस्तुत कोई भी सरल धुन सुनकर साधारण श्रोता भी संगीत का आनन्द ले सकते है।

शास्त्रीय एवं लोक संगीत दोनों विधाएं अपनी–अपनी जगह पर प्रभावशाली है। अन्तर केवल इतना ही है कि शास्त्रीय संगीत अधिकांशतः उन्ही लोगो को प्रभावित करने में सक्षम है, जिन्हे संगीत के व्याकरण– सुर–ताल, लय आदि का भली–भाँति ज्ञान होता है परन्तु लोक संगीत यदि किसी मधुर सुरावली में प्रस्तुत किया जा रहा है चाहे वे स्वर किसी कंठ अथवा वाद्य से निकले हों, तो वह सभी प्रकार के श्रोताओं को आनन्द प्रदान करने में सक्षम होता है। यदि शास्त्रीय संगीत मस्तिष्क है, तो लोक संगीत एक ह्रदय। दोनों अपने–अपने श्रोताओं को रिझाने में समर्थ होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

(1) 'बसन्त', संगीत विशारद, प्रकाशकः संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करणः 2013
(2) द्विवेदी, डॉ0 रमाकान्त, संगीत स्वरित, प्रकाशकः साहित्य रत्नालय, कानपुर, संस्करण : 2004
(3) रावत, डॉ0 निशा, संगीत में नेट सफलता के पथ, प्रकाशकः संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करणः2010
(4) श्रीवास्तव, पं0 हरिशचन्द्र, राग परिचय भाग–1, प्रकाशकः साउथ मलाका, इलाहाबाद, संस्करणः 2011
(5) 'मुकेश, महावीर प्रसाद, भाव संगीत संगम, प्रकाशकः संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करणः 1992